झारखंड उच्च न्यायालय, रांची
सिविल रिट याचिका संख्या 5214 / 2011

अली अहमद, पुत्र स्वर्गीय मथुरा अहमद

..... याचिकाकर्ता

बनाम

1. झारखंड राज्य, गृह सचिव, झारखंड सरकार, रांची।
2. पुलिस महानिदेशक, झारखंड सरकार, रांची।
3. पुलिस महानिरीक्षक, कोल्हान रेंज, बोकारो।
4. पुलिस उप महानिरीक्षक, कोयला रेंज, बोकारो।
5. पुलिस अधीक्षक, धनबाद।

..... प्रतिवादी।

कोरम: माननीय डॉ. न्यायमूर्ति एस.एन.पाठक

याचिकाकर्ता की ओर से : श्री अंशुमान कुमार, अधिवक्ता
प्रतिवादियों की ओर से : श्री राहुल साबू, जीपी-II
श्री कुणाल चंद्र सुमन, एसी से जीपी-II

12/17.01.2024 पक्षों की सुनवाई की गई।

2. याचिकाकर्ता ने बल-आदेश संख्या 2679/1999 को रद्द करने के लिए प्रकृति उत्प्रेषण-लेख याचिका जारी करने के लिए इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है, जिसके तहत प्रतिवादी संख्या 5 ने सेवा से बर्खास्तगी की सजा लगाई है।

याचिकाकर्ता ने आगे 25.10.2008 और 31.07.2010 के आदेश को निरस्त करने और अलग रखने के लिए प्रार्थना की, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत अपील और स्मारक को खारिज कर दिया गया था और सजा के आदेश की पुष्टि की गई थी।

याचिकाकर्ता ने यह भी प्रार्थना की है कि उपरोक्त आदेशों को निरस्त करने के बाद प्रतिवादियों को याचिकाकर्ता के सभी परिणामी लाभों के साथ सेवा में बहाल करने का निर्देश दिया जाए।

3. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि वर्ष 1997 में जब याचिकाकर्ता धनबाद में हवलदार के पद पर तैनात था, तब वह 13.09.1997 से छुट्टी पर चला गया था और उसे 18.09.1997 को ड्यूटी ज्वाइन करनी थी, लेकिन वह समय पर ज्वाइन नहीं कर सका क्योंकि वह बीमार पड़ गया और डॉ. ब्रजेंद्र सिंह, पीएमसीएच धनबाद के इलाज में था। हालांकि याचिकाकर्ता ने अपनी बीमारी के बारे में अपने उच्च अधिकारियों को पंजीकृत डाक के माध्यम से सूचित किया था, लेकिन इसके बावजूद, पुलिस अधीक्षक ने याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप पत्र जारी किया और याचिकाकर्ता के खिलाफ विभागीय कार्यवाही शुरू की। याचिकाकर्ता का यह भी मामला है कि न तो कोई अवसर दिया गया और न ही याचिकाकर्ता को इस बारे में कोई सूचना दी गई और यहां तक कि जांच के निष्कर्ष पर भी, याचिकाकर्ता को जांच रिपोर्ट नहीं दी गई। इसके बाद, जांच रिपोर्ट के आधार पर ही पुलिस अधीक्षक, धनबाद ने बल-आदेश संख्या 2679/1999 के तहत याचिकाकर्ता को सेवा से बर्खास्त करने का दंडात्मक आदेश जारी किया। बर्खास्तगी के उक्त आदेश के खिलाफ याचिकाकर्ता ने अपील और ज्ञापन दाखिल किया, जिसे भी खारिज कर दिया गया और बर्खास्तगी के आदेश की पुष्टि दोनों अधिकारियों ने की।

इससे व्यथित होकर याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है।

4. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री अंशुमान कुमार ने जोरदार ढंग से तर्क दिया कि विवादित आदेश कानून की दृष्टि में मान्य नहीं हैं। विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि केवल जांच रिपोर्ट के आधार पर अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा दण्ड दिया गया। विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि अपीलीय प्राधिकारी और पुनरीक्षण प्राधिकारी ने याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत बचाव पर विचार किए बिना अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा दिए गए दण्ड के आदेश की यांत्रिक पुष्टि की है। इस प्रकार, विवादित आदेश कानून की दृष्टि में मान्य नहीं हैं और इन्हें रद्द किया जाना चाहिए तथा अलग रखा जाना चाहिए। विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि विभागीय कार्यवाही एकपक्षीय रूप से की गई थी, क्योंकि याचिकाकर्ता को ऐसी कार्यवाही शुरू करने के बारे में सूचित नहीं किया गया था और उसकी पीठ पीछे कार्यवाही की गई। यहां तक कि जांच रिपोर्ट की प्रति भी याचिकाकर्ता को

नहीं दी गई और पुलिस अधीक्षक, धनबाद ने केवल जांच अधिकारी द्वारा दिए गए निष्कर्षों के आधार पर सेवा से बर्खास्तगी की सजा दी, जो एक बड़ी सजा है। यहां तक कि अपीलीय प्राधिकरण और पुनरीक्षण प्राधिकरण ने भी याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए बचाव पर विचार नहीं किया और याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत अपील और ज्ञापन को खारिज करके सजा के आदेश की यांत्रिक पुष्टि की। विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि उपरोक्त तथ्यों और कारणों के लिए, विवादित आदेश कानून की दृष्टि में मान्य नहीं हैं और उन्हें रद्द करने और अलग रखने के लिए उपयुक्त हैं और प्रतिवादियों को याचिकाकर्ता को सभी परिणामी लाभों के साथ सेवा में बहाल करने का निर्देश दिया जाना चाहिए।

5. प्रतिवादी-राज्य का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान वकील ने याचिकाकर्ता के विद्वान वकील की दलील का पुरजोर विरोध करते हुए प्रस्तुत किया कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी का आदेश जांच रिपोर्ट पर विचार करने के बाद पारित किया गया था, इसलिए बाद में अपीलीय प्राधिकारी के साथ-साथ पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा भी इसकी पुष्टि की गई थी। विद्वान वकील ने आगे तर्क दिया कि पुलिस बल में अनुशासनहीनता बर्दाश्त नहीं की जा सकती। याचिकाकर्ता जो पुलिस बल का सदस्य है, अपने पक्ष में स्वीकृत अवकाश की अवधि से अनधिकृत रूप से अनुपस्थित रहा है जिसे बर्दाश्त नहीं किया जा सकता है और इसलिए, दंड आदेश पूरी तरह से उचित है, जिसे बाद में अपीलीय प्राधिकारी के साथ-साथ पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा भी पुष्टि की गई थी। विद्वान वकील ने आगे तर्क दिया कि 06.01.2023 को, इस न्यायालय ने प्रतिवादियों को विभागीय कार्यवाही की मूल फाइल पेश करने का निर्देश दिया याचिकाकर्ता से संबंधित विभागीय कार्यवाही के मूल अभिलेखों की ओर न्यायालय का ध्यान आकर्षित करते हुए, यह प्रस्तुत किया गया कि याचिकाकर्ता को सुनवाई का पर्याप्त अवसर दिया गया है और प्राकृतिक न्याय के प्रमुख सिद्धांत का पालन करने के बाद, याचिकाकर्ता को आरोप का दोषी मानते हुए बर्खास्तगी का आदेश पारित किया गया है। विद्वान वकील ने आगे तर्क दिया कि कानून अच्छी तरह से स्थापित है कि संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत बैठा यह न्यायालय साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन नहीं कर सकता है।

6. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं की प्रतिद्वंद्वी दलीलें सुनने तथा अभिलेख पर लाए गए दस्तावेजों के अवलोकन के पश्चात, यह न्यायालय इस सुविचारित मत पर है कि निम्नलिखित तथ्यों तथा कारणों से हस्तक्षेप का कोई मामला नहीं बनता है:

(I) जांच अधिकारी के निष्कर्षों पर विचार किया गया तथा अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा ठोस तथा वैध कारण बताते हुए दण्ड आदेश पारित किया गया। अपीलीय प्राधिकारी तथा पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा भी इसकी पुष्टि की गई, जिसके लिए किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

(II) ऐसा कुछ भी अभिलेख पर नहीं लाया गया है जिससे पता चले कि कार्यवाही में कोई प्रक्रियागत चूक हुई है, बल्कि याचिकाकर्ता को सुनवाई का पर्याप्त अवसर प्रदान करके प्राकृतिक न्याय के प्रावधानों का पालन करते हुए पूर्ण जांच की गई है।

(III) निस्संदेह, जब दण्ड के आदेश की पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा पुष्टि की गई है, तो यह न्यायालय उसमें हस्तक्षेप करने से खुद को रोकता है।

7. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **बी.सी. चतुर्वेदी बनाम भारत संघ एवं अन्य के मामले में, (1995) 6 एससीसी 749** में रिपोर्ट किया है, इस प्रकार माना है:

> "उच्च न्यायालय अपीलीय प्राधिकारी के रूप में कार्य नहीं करता है। इसका अधिकार क्षेत्र कानून की त्रुटियों या प्रक्रियात्मक त्रुटियों को सुधारने के लिए न्यायिक समीक्षा की सीमाओं से घिरा हुआ है, जिससे स्पष्ट अन्याय या प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन होता है। न्यायिक समीक्षा एक अपीलीय प्राधिकारी के रूप में योग्यता के आधार पर किसी मामले के निर्णय के समान नहीं है।"
>
> (ii) सामग्री की अपर्याप्तता जांच अधिकारी के निष्कर्षों को रद्द करने का आधार नहीं हो सकती है और न ही विभागीय कार्यवाही के मामलों में जांच अधिकारी/अनुशासनात्मक प्राधिकारी के स्थान पर कोई प्रतिस्थापित दृष्टिकोण लिया जा सकता है।
>
> माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **परिधान निर्यात संवर्धन परिषद बनाम भारत संघ एवं अन्य** के मामले में।
>
> **ए.के. चोपड़ा** ने **(1999) 1** एससीसी **759** में रिपोर्ट दी है कि:
>
> 16. ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय ने इस स्थापित स्थिति को नजरअंदाज कर दिया है कि विभागीय कार्यवाही में, अनुशासनात्मक प्राधिकारी तथ्यों का एकमात्र न्यायाधीश होता है और यदि अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष अपील प्रस्तुत की जाती है, तो अपीलीय प्राधिकारी के पास साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने और तथ्यों के आधार पर अपने निष्कर्ष पर पहुंचने की शक्ति/और अधिकार क्षेत्र भी होता है, क्योंकि वह एकमात्र तथ्य-खोजी प्राधिकारी होता है। एक बार साक्ष्य के मूल्यांकन पर आधारित तथ्य के निष्कर्ष दर्ज हो जाने के बाद, रिट अधिकार क्षेत्र में उच्च न्यायालय सामान्यतः उन तथ्यात्मक निष्कर्षों में हस्तक्षेप नहीं कर सकता है, जब तक कि उसे यह न लगे कि दर्ज किए गए निष्कर्ष या तो किसी साक्ष्य पर आधारित नहीं थे या निष्कर्ष पूरी तरह से विकृत और/या कानूनी रूप से

अस्थिर थे। साक्ष्य की पर्याप्तता या अपर्याप्तता पर उच्च न्यायालय के समक्ष बहस करने की अनुमति नहीं है। चूंकि उच्च न्यायालय विभागीय कार्यवाही के दौरान दर्ज किए गए तथ्यात्मक निष्कर्षों पर अपीलीय प्राधिकारी के रूप में नहीं बैठता है, इसलिए न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग करते समय, उच्च न्यायालय सामान्यतः विभागीय प्राधिकारियों के निष्कर्ष के स्थान पर अपराधी के अपराध के संबंध में अपने निष्कर्ष को प्रतिस्थापित नहीं कर सकता है। यहां तक कि जहां तक दंड या सजा लगाने का सवाल है, जब तक कि अनुशासनात्मक या विभागीय अपीलीय प्राधिकारी द्वारा लगाया गया दंड या जुर्माना या तो अस्वीकार्य हो या ऐसा हो कि वह उच्च न्यायालय की अंतरात्मा को झकझोर दे, उसे सामान्यतः अपनी राय के स्थान पर कोई अन्य दंड या जुर्माना नहीं लगाना चाहिए। ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश और खंडपीठ दोनों ने इस सुस्थापित सिद्धांत की अनदेखी की कि भले ही प्रशासनिक कार्रवाई की न्यायिक समीक्षा लचीली होनी चाहिए और उसका आयाम बंद नहीं होना चाहिए, फिर भी न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग करते हुए न्यायालय तथ्यों के निष्कर्षों की शुद्धता से चिंतित नहीं है जिसके आधार पर आदेश दिए गए हैं, जब तक कि वे निष्कर्ष साक्ष्य द्वारा उचित रूप से समर्थित हों और कार्यवाही के माध्यम से प्राप्त किए गए हों, जिनमें प्रक्रियात्मक अवैधताओं या अनियमितताओं के लिए दोष नहीं लगाया जा सकता है जो उस प्रक्रिया को दूषित करते हैं जिसके द्वारा निर्णय लिया गया था। न्यायिक समीक्षा, यह याद रखना चाहिए, निर्णय के विरुद्ध निर्देशित नहीं होती है, बल्कि निर्णय लेने की प्रक्रिया की जांच तक ही सीमित होती है। चीफ कांस्टेबल ऑफ द नॉर्थ वेल्स पुलिस बनाम इवांस1 में लॉर्ड हेलशम ने कहा:

"न्यायिक समीक्षा का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि व्यक्ति को निष्पक्ष व्यवहार मिले, न कि यह सुनिश्चित करना कि प्राधिकारी, निष्पक्ष व्यवहार करने के बाद, किसी ऐसे मामले पर, जिसके बारे में निर्णय लेने के लिए वह कानून द्वारा अधिकृत या बाध्य है, ऐसे निष्कर्ष पर पहुंचे जो न्यायालय की दृष्टि में सही हो।"

22. इस मामले के स्थापित तथ्यों और परिस्थितियों में, हमें शुरू में यह मानने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश और खंडपीठ दोनों ने विभागीय अधिकारियों द्वारा दर्ज किए गए

तथ्यों के निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने और दंड की मात्रा में हस्तक्षेप करने में स्पष्ट त्रुटि की, जैसे कि उच्च न्यायालय अपीलीय क्षेत्राधिकार में बैठा था। विद्वान एकल न्यायाधीश और खंडपीठ के निर्णयों से, यह बिल्कुल स्पष्ट है कि प्रतिवादी द्वारा किए गए "अनुचित कृत्य" के संबंध में निष्कर्ष, जैसा कि विभागीय अधिकारियों ने पाया था, साक्ष्य के पुनर्मूल्यांकन पर भी दोषपूर्ण नहीं पाए गए। उच्च न्यायालय ने यह नहीं पाया कि शिकायतकर्ता द्वारा आरोपित घटना घटित नहीं हुई थी। न तो विद्वान एकल न्यायाधीश और न ही खंडपीठ ने पाया कि जांच अधिकारी या विभागीय अपीलीय प्राधिकरण द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष मनमाने या यहां तक कि विकृत थे। वास्तव में, उच्च न्यायालय ने जांच के संचालन में कोई भी दोष नहीं पाया। विद्वान एकल न्यायाधीश का यह निर्देश कि प्रतिवादी को पिछले वेतन का हकदार नहीं माना जा सकता तथा उसे कम से कम दो वर्षों के लिए शहर से बाहर तैनात किया जाना चाहिए, जिसे खंडपीठ ने बरकरार रखा, यह अपने आप में दर्शाता है कि उच्च न्यायालय ने शिकायतकर्ता के मामले को पूरी तरह से माना, अन्यथा न तो पिछले वेतन को रोकना आवश्यक था और न ही प्रतिवादी को कम से कम दो वर्षों के लिए शहर से बाहर तैनात करने का निर्देश देना आवश्यक था। हमारे विचार में उच्च न्यायालय ने उस दंड में हस्तक्षेप करके गलती की, जिसे विभागीय प्राधिकारियों द्वारा प्रतिवादी पर उसके सिद्ध कदाचार के लिए विधिपूर्वक लगाया जा सकता था। यह मानना कि चूंकि प्रतिवादी ने मिस एक्स के साथ "वास्तव में छेड़छाड़" नहीं की थी तथा उसने केवल "छेड़छाड़ करने का प्रयास" किया था तथा उसके साथ शारीरिक संपर्क बनाने में "सफल नहीं हुआ", इसलिए सेवा से हटाने की सजा उचित नहीं थी, गलत था। उच्च न्यायालय को प्राधिकारी के विवेक के स्थान पर अपने विवेक का प्रयोग नहीं करना चाहिए था। मामले के तथ्यों तथा परिस्थितियों में, जो दंड लगाया जाना आवश्यक था, वह ऐसा मामला था जो विशेष रूप से सक्षम प्राधिकारी के अधिकार क्षेत्र में आता था तथा उच्च न्यायालय द्वारा किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं थी। उच्च न्यायालय का पूरा दृष्टिकोण दोषपूर्ण रहा है। उच्च न्यायालय के विवादित आदेश को केवल इसी आधार पर बरकरार नहीं रखा जा सकता। लेकिन मामले का एक और पहलू है जो मौलिक है और मामले की जड़ तक जाता है तथा महिला

कर्मचारियों के कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न के मामलों से निपटने में न्यायालय के दृष्टिकोण से संबंधित है।

8. इसके अलावा, **भारत संघ एवं अन्य बनाम पी. गुनासेकरन** के मामले में, **(2015) 2 एससीसी 610** में रिपोर्ट किया गया, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से देखा है कि, "अनुच्छेद 226 और 227 के तहत अपनी शक्तियों के प्रयोग में उच्च न्यायालय सबूतों की सराहना करने या जांच कार्यवाही में निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने का जोखिम नहीं उठा सकता है यदि वे कानून के अनुसार आयोजित किए जाते हैं, या सबूतों की विश्वसनीयता/पर्याप्तता में जा सकते हैं, या यदि निष्कर्ष कुछ कानूनी सबूतों पर आधारित हैं तो हस्तक्षेप कर सकते हैं, या तथ्य की त्रुटि को सही कर सकते हैं, चाहे वह कितनी भी गंभीर क्यों न हो, या सजा की आनुपातिकता में जा सकते हैं जब तक कि यह अदालत की अंतरात्मा को झकझोर न दे"।

9. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने बिहार राज्य एवं अन्य बनाम फूलपरी कुमारी के मामले में, (2020) 2 एससीसी 130 में रिपोर्ट की है, निम्नानुसार माना है:

> "6. प्रतिवादी के खिलाफ आपराधिक मुकदमा अभी भी एक सक्षम आपराधिक अदालत द्वारा विचाराधीन है। प्रतिवादी की सेवा से बर्खास्तगी का आदेश उसके खिलाफ आयोजित एक विभागीय जांच के अनुसार था। जांच अधिकारी ने सबूतों की जांच की और निष्कर्ष निकाला कि प्रतिवादी द्वारा अवैध रिश्वत की मांग और स्वीकृति का आरोप साबित हुआ था। विद्वान एकल न्यायाधीश और उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच ने सबूतों की फिर से सराहना करने और इस निष्कर्ष पर पहुंचने में त्रुटि की कि रिकॉर्ड पर सबूत प्रतिवादी के अपराध को इंगित करने के लिए पर्याप्त नहीं थे:
>
> यह स्थापित कानून है कि विभागीय जांच के अनुसरण में पारित आदेशों में हस्तक्षेप केवल "कोई सबूत नहीं" के मामले में हो सकता है। सबूतों की पर्याप्तता न्यायिक समीक्षा के दायरे में नहीं है आपराधिक न्यायालय द्वारा साक्ष्य के सख्त नियमों का पालन किया जाना चाहिए, जहां अभियुक्त के अपराध को उचित संदेह से परे साबित किया जाना चाहिए। दूसरी ओर, संभाव्यता की प्रबलता वह परीक्षण है जिसे अपराधी को आरोप का दोषी ठहराने के लिए अपनाया जाता है।
>
> उच्च न्यायालय को साक्ष्य की पुनः जांच करके और अनुशासनात्मक प्राधिकारी के दृष्टिकोण से अलग दृष्टिकोण अपनाकर प्रतिवादी की बर्खास्तगी के आदेश में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए था, जो जांच अधिकारी के निष्कर्षों पर आधारित था।"

चूंकि आरोप अनुशासनहीनता और कर्तव्यों की उपेक्षा से संबंधित हैं, इसलिए इस न्यायालय का मानना है कि सेवा से बर्खास्तगी की सजा देने में प्रतिवादियों द्वारा कोई अवैधता या कोई दुर्बलता नहीं की गई है। पुलिस बल एक अनुशासित बल है और प्रत्येक पुलिस कर्मी को अत्यधिक अनुशासन बनाए रखना आवश्यक है। थोड़ी सी भी अनुशासनहीनता दंडनीय है।

10. उपरोक्त टिप्पणियों, न्यायिक घोषणाओं और कानूनी प्रस्तावों के अनुक्रम में, रिट याचिका खारिज करने योग्य है और इसे खारिज किया जाता है।

(डॉ. एस.एन. पाठक, जे.)

कुणाल/-

<u>यह अनुवाद अधिवक्ता ज्ञान रंजन, पैनल अनुवादक के द्वारा किया गया।</u>